Vol. 8 | Issue-3 JULY-SEPTEMBER, 2025

RNI : UPBIL/2020/79032

सहयोग राशि : मात्र ₹ 30/- प्रति

फार्ड संवाद
FAARD SAMVAAD

FAARD FOUNDATION फार्ड फाउण्डेशन

FOUNDATION FOR ADVANCEMENT OF AGRICULTURE AND RURAL DEVELOPMENT

कृषि प्रगति एवं ग्रामीण विकास संस्था

कृषि, ग्रामीण विकास, शिक्षा, पर्यावरण, स्वास्थ्य व उद्यमिता की दिशा में समर्पित

सन्देश

विकसित भारत@2047 के लिए कृषि एवं कृषि शिक्षा

कृषि और कृषि शिक्षा भारत की आर्थिक विकास की सबसे महत्वपूर्ण ताकतों में से एक है। आर्थिक विकास और विकसित भारत @2047 का लक्ष्य तभी हासिल किया जा सकता है जब हमारी कृषि उन्नत और सशक्त हो। विकसित भारत के हमारे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जिन लक्षित समूहों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है, वे हैं—युवा (40% की आयु 13–35 वर्ष के बीच या 66% 35 वर्ष से कम उम्र के), गरीब (26.4% गरीबी रेखा से नीचे की जनसंख्या), महिलाएं (लगभग 50% जनसंख्या) और किसान (>12 करोड़, जिनमें से 86% लघु और सीमांत किसान हैं और जो भारतीय जनबल का 45.8% हिस्सा हैं)। शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट का मुख्य कारण कृषि पाठ्यक्रमों से मूल विज्ञानों का क्षरण, अत्यधिक इनब्रीडिंग (सजाति प्रजनन), कौशल में अत्यंत कमी, कृषि शिक्षा, रोजगार और उद्योगों की आवश्यकताओं के बीच संयोजन की कमी तथा समग्र रूप से स्नातकों की रोजगार क्षमता में कमी है। इसे साकार करने के लिए, हमें अपनी वर्तमान कृषि शिक्षा प्रणाली को पुनः उन्मुख करना होगा, जिसमें कृषि और उससे संबद्ध क्षेत्रों में कौशल आधारित मुख्य गतिविधियों को कृषि शिक्षा का हिस्सा बनाना आवश्यक है ताकि कृषि और कृषि–आधारित उद्योगों में रोजगार के अवसरों को बढ़ावा दिया जा सके।

हम उभरती हुई चुनौतियों को नजरअंदाज नहीं कर सकते, विशेष रूप से ज्ञान आधारित समाज की नई मांगों को, जिसमें एक गतिशील उद्योग, उच्च स्तरीय अनुसंधान एवं नवाचार और नीति समर्थन शामिल हैं। विश्वविद्यालयों की सीखने वाली संस्थाओं के रूप में उनकी कार्य करने की क्षमता को बदलती मांगों के अनुसार निरंतर अनुकूलन की क्षमता से मापा जाना चाहिए। भविष्य में पेशेवरों की मात्रात्मक और गुणात्मक आवश्यकता को पूरा करने के लिए शिक्षा में एक उत्तरदायी परिवर्तन की आवश्यकता है, जो सूचित नीतिगत दृष्टिकोणों और हस्तक्षेपों द्वारा समर्थित हो, और जो भविष्य की संभावनाओं पर आधारित हो। इसलिए विश्वविद्यालयों को नवीनतम विधियों, तकनीकों और उपकरणों तक बेहतर पहुँच प्राप्त होनी चाहिए, ताकि वे इस प्रकार की दूरदर्शी सोच को बढ़ावा दे सकें। विश्वविद्यालय नए शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की पेशकश और वर्तमान पाठ्यक्रमों में सुधार के लिए आपस में नेटवर्क बना सकते हैं। निजी उद्यमों ने अतीत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बहुमूल्य सेवाएं प्रदान की हैं। वे विश्वविद्यालय शिक्षा की गुणवत्ता और दक्षता को बेहतर बनाने में काफी योगदान दे सकते हैं। हालांकि निजी पहल को प्रोत्साहित करते समय यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि मनमानी, भाई–भतीजावाद और पक्षपात जैसे बाहरी कारक प्रभाव में न आएं। पात्रता मानदंड, शिक्षण स्तर और अवसंरचना में कोई समझौता नहीं किया जा सकता ताकि शिक्षण की गुणवत्ता प्रभावित न हो। देश में 'विशेष शिक्षा क्षेत्र' (SEZ & Special Education Zones) बनाए जा सकते हैं, जो नेटवर्किंग के आधुनिक मंत्र के साथ कार्य करेंगे। प्रस्तावित SEZ में शिक्षा सेवा प्रदाताओं का एक समूह अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धी वातावरण में कार्य करेगा, जहाँ प्रवेश, शिक्षण और संवाद, प्रायोगिक कक्षाएं और परीक्षा की प्रक्रिया सरल और बाधारहित होगी। प्रस्तावित SEZ में शैक्षणिक प्रशासन की दक्षता और पारदर्शिता प्रमुख विशेषताएं होंगी।

वर्तमान में हमारी शिक्षा प्रणाली के दावों और इसका 70% ग्रामीण आबादी या कृषि में लगे लोगों के जीवन पर प्रभाव के बीच बड़ा असंतुलन है। यह स्पष्ट रूप से बजट आवंटन, प्रबंधन, शासन, विकास और वर्तमान शिक्षा प्रणाली की प्रासंगिकता पर सवाल उठाता है। हमें अपनी शिक्षा प्रणाली को भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए फिर से दिशा देना होगा। शिक्षा का सीधा संबंध आर्थिक विकास, असमानता और गरीबी, ग्रामीण–शहरी प्रवासन और प्रतिभा पलायन, परिवार का आकार और प्रजनन दर, कृषि विकास और ग्रामीण विकास तथा मानव विकास से है। शिक्षा को केवल एक प्रकार के निवेश के रूप में नहीं देखा जा सकता, बल्कि यह सभी प्रकार के विकास का मूल तत्व है और इसलिए 'विकसित भारत' के हमारे सपने को साकार करने में यह एक प्रमुख घटक होगी। कृषि शिक्षा को राष्ट्रीय कृषि नीति का एक अभिन्न हिस्सा बनाकर इसे अपनाना और विशेष रूप से शिक्षा, अनुसंधान और विस्तार सेवाओं में पर्याप्त, स्थायी और पूर्वानुमानित निवेश सुनिश्चित करना एक सही दिशा में उठाया गया कदम होगा।

प्रो. पंजाब सिंह, अध्यक्ष

इस अंक में :

संदेश	1
सम्पादकीय	2
लीची की खेती तथा पौधों व फलों का संरक्षण, सम्वर्धन एवं प्रबंधन	3
धान की उन्नतशील खेती : उचित सस्य क्रियाएं एवं फसल प्रबंधन	7
आधुनिक तकनिकियों द्वारा पूर्वी उत्तर प्रदेश में खरीफ मक्का का विस्तार	10
वर्षा ऋतु में भिंडी से अधिक उत्पादन हेतु किसानों को सुझाव	13
गतिविधियाँ	16

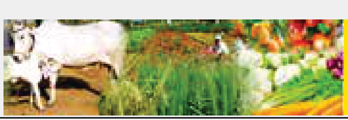

कृषि, ग्रामीण विकास, शिक्षा, पर्यावरण, स्वास्थ्य व उद्यमिता की दिशा में समर्पित

सम्पादकीय मण्डल

अध्यक्ष
प्रो. पंजाब सिंह
पूर्व सचिव
कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग,भारत सरकार
एवं
पूर्व महानिदेशक
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान सम्पादक
प्रो. आर. एम. सिंह
पूर्व डीन
कृषि विज्ञान संस्थान, बीएचयू, वाराणसी

प्रबन्ध सम्पादक
प्रो. एस. आर. सिंह
पूर्व निदेशक
कृषि विज्ञान संस्थान, बीएचयू, वाराणसी

सम्पादक
डॉ. राजेश सिंह
पी.आर.ओ., बीएचयू, वाराणसी

उप-सम्पादक
डॉ. उमेश सिंह
ट्रेनिंग एवं प्लेसमेंट अधिकारी, बीएचयू, वाराणसी

सहायक सम्पादक
श्री चंदर शेखर
ए.पी.आर.ओ., बीएचयू, वाराणसी

कोषाध्यक्ष
राम कुमार राय
शिवांश एग्रो प्रोड्यूसर कंपनी, गाजीपुर
सम्पर्क नं. 7753073362

रजिस्टर्ड कार्यालय
फार्ड फाउण्डेशन
सरस्वती कुंज, नरायणपुर (डाफी) पोस्ट ऑफिस-नैपुरा, जिला-वाराणसी-221 011 (उ.प्र.)
e-mail: faardvaranasi@gmail.com
Website : www.faard.org

सम्पादकीय

कृषि से जुड़े उद्योगों के विकास से मजबूत होगी ग्रामीण अर्थव्यवस्था

ग्रामीण भारत की समृद्धि कृषि क्षेत्र से जुड़ी है ग्रामीण क्षेत्र की बड़ी आबादी आज भी खेती और पशुपालन पर निर्भर है सरकार के प्रयासों के बावजूद आज भी ज्यादातर खेती पुराने तौर तरीके से हो रही है। इन क्षेत्रों में कृषि से जुड़े उद्योगों की कमी है जिससे उत्पादन एवं खाद्य प्रसंस्करण के बीच बढ़ती खाई किसानों की आय को प्रभावित करती है। ऐसे में खेती से किसानों की आय घट रही है। 2002–3 में परिवार की कुल आय में खेती का योगदान 46 फीसदी था जो 2018–19 में घटकर 36 फीसद रह गया है। गिरती आय और बढ़ता कर्ज कृषि पर निर्भर परिवारों के हालात खुद बयां कर रहा है। भारत की करीब 80 फीसद ग्रामीण आबादी पोषण की जरूरतों को पूरा नहीं कर पा रही है और वह रोज 2400 से कम कैलोरी ले रही है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभावी खाद्य प्रसंस्करण उद्योग न होने के कारण 20–25 फीसद खाद्य पदार्थों का नुकसान हो जाता है और किसानों की आय प्रभावित होती है।

केन्द्रीय बजट 2025–26 में कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय ने 137759 करोड़ रुपए (केंद्रीय बजट की 2.7 प्रतिशत) आवंटित किया। यह वर्ष 2024–25 के संशोधित अनुमानों की तुलना में 2.5 फीसद कम है। पीएम किसान और फसली बीमा जैसी योजनाओं पर ध्यान केंद्रित करने से कृषि में लचीलापन नहीं आएगा। इन प्रणालियों के लिए सरकार को सहफसली खेती, पशुपालन, मृदा व जल प्रबंधन, किट व रोग नियंत्रण, कृषि अवशेष प्रबंधन आदि को बढ़ावा देने के साथ थोक व गैर थोक कृषि उपज के लिए सार्वजनिक बाजारों के एकीकरण की नीति अपनानी होगी और किसानों को तकनीकी सहायता मुहैया कराना होगा। कैश ट्रांसफर की नीतियों से कृषि क्षेत्र को बहुत मजबूत नहीं बनाया जा सकता है। व्यक्तिगत लाभार्थी उन्मुख आवंटन का एक उत्कृष्ट उदाहरण पीएम किसान के तहत किसान परिवारों को सालाना रु. 6000 दिया जाना है। लेकिन इससे किसान परिवारों की आर्थिक स्थिति में बहुत सुधार आया हो ऐसा कोई सबूत नहीं मिलता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए एकीकृत खेती के मॉडल पर जोर देने की जरूरत है। इस मॉडल में फसल उगाने के साथ पशुपालन, मछली पालन, वानिकी, फल, फसल, अवशेष प्रबंधन के जरिए किसान और श्रमिकों को वर्ष भर लगातार आय मुहैया करायी जा सकती है खाद्य प्रसंस्करण और खेती से जुड़े दूसरे उद्यम लगाकर ग्रामीणों की आय को बढ़ाया जा सकता है। लुप्तप्राय ग्रामीण उद्योगों को पुनः स्थापित करने पर पहल करना होगा सरकार को पुनः सरकार को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि स्वरोजगार के लिए युवाओं को आसानी से लोन मिल सके इससे इसमें निहित जोखिम भी सरकार को उठाना होगा क्योंकि अगर अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को दोहरे अंक में पहुंचना है तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मजबूती के बिना ऐसा हो पाना संभव नहीं है।

-संपादक

FAARD FOUNDATION फार्ड फाउण्डेशन
FOUNDATION FOR ADVANCEMENT OF AGRICULTURE AND RURAL DEVELOPMENT
कृषि प्रगति एवं ग्रामीण विकास संस्था

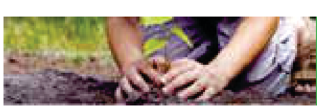

जैविक खेती करें किसान
सुधरे भूमि हो धनवान.

लीची की खेती तथा पौधों व फलों का संरक्षण, सम्वर्धन एवं प्रबंधन

प्रोफ़ेसर अखौरी वैशम्पायन
भूतपूर्व निदेशक, कृषि विज्ञान सँस्थान, एवं अवकाश प्राप्त मानद आचार्य, अनुवांशिकी व पादप प्रजनन विभाग। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।
Mob. : +91- 9415201138
Email : prfssr.vaishampayan@gmail.com

लीची गर्मियों में सेवन करने हेतु एक स्वादिष्ट पौष्टिक एवं सुविख्यात फल है। भारत में लीची की खेती जिन प्रदेशों में होती है, उनमें उत्पादन और गुणवत्ता की वरीयता क्रमानुसार बिहार के मुजफ्फरपुर, पूर्वी चम्पारण, समस्तीपुर, वैशाली एवं भागलपुर प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त, उत्तराँचल (उधमसिंह नगर, पिथौड़ागढ़, नैनीताल, हरिद्वार), पश्चिम बंगाल (मुर्शिदाबाद एवं अन्य 24 परगना), आसाम (कामरूप, सोनीपत और बोनगाई गाँव), पंजाब (गुरदासपुर, पठानकोट, रोपड़, होशियारपुर), उत्तर प्रदेश (सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ एवं कुशीनगर), झारखण्ड् (गुमला, राँची, लोहरदग्गा), तथा त्रिपुरा (पूर्वी एवं मध्य भाग) में भी लीची की खेती होती है।

मुजफ्फरपुर में सबसे बड़ी उपज देने वाली शाही लीची अपनी विशिष्ट गुणवत्ता और स्वाद हेतु चहुँओर सुप्रसिद्ध है, जिसकी कृषि के साथ–साथ अनवरत इसके फलदायी वृक्षों के सँरक्षण, संवर्धन व प्रबंधन हेतु अथक प्रयास किए जाते रहे हैं। मुजफ्फरपुर में लगभग 12,000 हेक्टेयर में लीची की खेती होती है, जो बिहार में लीची उत्पादन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। साथ ही मेहसी एवं बिहार प्रदेश के कई अन्य क्षेत्रों में भी शाही लीची की खेती की जाती है, जो कुल मिला कर सम्पूर्ण भारत के लीची उत्पादन का 40% से भी अधिक भाग होता है। किन्तु इसकी उत्पादकता 80% से भी अधिक मुजफ्फरपुर में ही है, चुँकि यहाँ तथा साथ ही वैशाली, समस्तीपुर, पूर्वी चम्पारण व बेगूसराय की जलोढ़ मिट्टी कैल्शियम की उपयुक्त मात्रा के कारण लीची की खेती हेतु अत्यन्त उपयुक्त है। लीची की खेती हल्की अम्लीय एवं लेटराइट मिट्टी में भी सफलतापूर्वक की जा रही है, यानि ऐसी मिट्टी जो उष्णकटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों, खासकर उच्च तापमान और भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में पाई जाती है। अधिक जलधारण क्षमता एवं नम मिट्टी में इसके पौधों में अच्छी बढ़त एवं फलोत्पादन होता है। किन्तु जल भराव वाले क्षेत्र लीची के लिए उपयुक्त नहीं होते, अतरू इसकी खेती जल निकास–युक्त उपरवार भूमि में करने से अच्छा लाभ प्राप्त होता है।

मुजफ्फरपुर की अनुकूल जलवायु, शाही लीची की खेती हेतु वरदान साबित हुई है। यहाँ मुख्य रूप से शाही लीची और 18% क्षेत्र में चाइना लीची की खेती की जाती है, जब कि लगभग 12% क्षेत्रों में लीची की कुछ और भी प्रजातियाँ लगाई जाती हैं (जैसे लौन्गिया एवं कलकत्ता)। यद्यपि विदेशी मुद्रा लाभ दे पाने के दृष्टिकोण से निर्यात किये जाने वाले गुणवत्ता व स्वाद युक्त मुजफ्फरपुर की शाही लीची ही सर्वश्रेष्ठ रही है।

शाही लीची के फल बड़े होते हैं। इसके प्राकृतिक रस से भरे गूदे अत्यन्त मीठे तथा गुलाब जैसी सुगन्ध का सँचार करते प्रतीत होते हैं। विगत कुछ वर्षों में मुजफ्फरपुर के मुशहरी ब्लौक के अन्तर्गत स्थापित भारतीय कृषि अनुसंधान शोध परिषद की एक इकाई, राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र के वैज्ञानिकों द्वारा लीची को 5 दिनों तक ताजा रखने हेतु ग्लूकोज का उपयोग करने की एक नई तकनीक विकसित की गई है। साथ ही यहाँ के लीची बागों का चयन एवं उनके लिये सारी विशेष आवश्यक तैयारी भी की जाती रही है, ताकि लीची को निर्यात के दृष्टिकोण से और भी अधिक उन्नत बनाया जा सके। विभिन्न देशों की माँग–पूर्ति में शाही लीची का सबसे अधिक निर्यात संयुक्त अरब अमीरात (यू०ए०ई०) एवं अन्य पाश्चात्य देशों में भी किया जाता है। यहाँ तक की इन वर्षों में शाही लीची के पेड़ों की भी जीयो–टैगिंग की जा रही है, ताकि उत्पादन की निगरानी की जा सके और सँरक्षण को सुदृढ़ किया जा सके।

शाही लीची के फलों के पोषक तत्वों के कारण इसका निर्यात हर वर्ष बढ़ता जा रहा है। इस फल के 100 ग्राम (3.5–आउन्स) गूदे में 66 कैलोरी ऊर्जा, 0.83 ग्रा० प्रोटीन, 0.44 ग्रा० वसा, 16.5 ग्रा० कार्बोहाइड्रेट, 1.3 ग्रा० आहारीय रेशा, 15.2 ग्रा० शर्करा, तथा 71.5 मि०ग्रा० विटामिन सी० विद्यमान होते हैं। बल्कि एक इनसान की दैनिक विटामिन सी० शाही लीची फल के 100 ग्रा० गूदे से पूरी हो जा सकती है। साथ ही इस फल में फोलेट की महत्वपूर्ण उपस्थिति, गर्भवती स्त्रियों हेतु विटामिन बी० के प्राकृतिक

लीची के घने वृक्षों में कैनोपी की व्यवस्था द्वारा पौधों के पत्तों और टहनियों को इस तरह से प्रबंधित किया जाता है कि इस अनवरत प्रबन्धन से सूर्य के प्रकाश का अधिकतम उपयोग हो सके और पौधों का विकास और फलने-फूलने की प्रक्रिया में सुधार हो सके। इसका मुख्य उद्देश्य पौधों के स्वास्थ्य और उत्पादकता को अनुकूलित करना है।

स्रोत की उपयोगी भूमिका का निर्वहन करती है। इसके अतिरिक्त शाही लीची के दे में सूक्ष्म पोषक तत्व, जैसे पोटैशियम, जिन्क, कौपर एवं आयरन की भी प्रचुर उपस्थित मानव स्वास्थ्य हेतु लाभदायक होता है। ये प्राकृतिक तत् मानव कोशिकाओं को सूजन, मानसिक तनाव, बढ़ती आयु की समस्याएँ एवं प्रदूषण के दुष्प्रभाव से अत्यधिक बचाव करने में सहायक होते हैं।

सेव तथा तरबूज की तरह लीची में भी पौलीफिनौल की प्रचूर उपस्थिति होती है, किन्तु कई अन्य फलों की तरह लीची का ग्लाइसेमिक इंडेक्स (जीआई) माप 0 से 100 तक के पैमाने में 50 से नीचे होता है जो यह दर्शाता है कि इसके 100 ग्रा० तक के सेवन से मानव रक्त शर्करा में अचानक वृद्धि की सम्भावना नहीं रहती है। साथ ही औषधीय द्रिष्टिकोण से लीची के प्रयोग से होने वाले लाभ में (क) प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि, (ख) यकृत के रोग से बचाव, (ग) त्वचा का स्वस्थ रख–रखाव एवं (घ) कैन्सर जैसे घातक रोग की सम्भावना को क्षीण करना, आदि सम्मिलित हैं। इन विशेषताओं के आधार पर मुजफ्फरपुर के शाही लीची को सन 2018 में ही भौगोलिक संकेत जी०आई० टैग प्रदान किया गया है।

यद्यपि लीची के वृक्ष का अत्यधिक सघन विकास होता है जिसके अन्तर्गत घनी डालियाँ और पत्तियाँ का तीव्र फैलाव होता है। इसे समस्या से निबटने हेतु कैनोपी प्रबंधन किया जाता है, जिसके अन्तर्गत होता है छत्र प्रबंधन या वृक्षों की छतरी का प्रबंधन है। इसका उपयोग विशेषकर लीची के पेड़ों, की गुणवत्ता और उपज बढ़ाने के लिए किया जाता है, जिसमें सूर्य के प्रकाश का इष्टतम उपयोग करने के लिए पत्तियों और शाखाओं की व्यवस्था को नियंत्रित करना शामिल है। समय–समय पर भारतीय राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुशहरी, मुजफ्फरपुर के परिसर में आयोजित छँटाई प्रबंधन (कैनोपी मैनेजमेंट) पर 'हैंड्स ऑन' प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया जाता रहा है, ताकि लीची हितधारकों द्वारा हर वर्ष सकारात्मक प्रभाव पड़ते रहने से शाही लीची की खेती आवर्त गति से उन्नत होती जाए।

मुजफ्फरपुर की शाही लीची न केवल एक स्वादिष्ट फल है, बल्कि क्षेत्रीय किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण आय का स्रोत भी है। किसानों को उचित बाजार और अच्छी मूल्य श्रृंखला की आवश्यकता है। तथापि लीची व्यापारियों से उनके अच्छे सम्बन्ध स्थापित कराने में क्षेत्रीय सरकारी, अर्ध–सरकारी एवं गैर–सरकारी तन्त्र एक नियामक के अन्तर्गत किसानों को प्रचुर सहायता प्रदान करते हैं, ताकि उनके उत्पादों को क्षेत्रीय, प्रादेश्विक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभाजित करते हुए, तथा यथा सम्भव हर क्षेत्र की माँग पूर्ति को ध्यान में रखते हुए, किसान भाईयों को उनकी फसल का उचित मूल्य प्राप्त हो सके।

आवश्यकता है अब लीची के प्रसँस्करण हेतु मुजफ्फरपुर एवं इसके 50–100 कि०मी० की परिधि में अधिकाधिक लीची प्रसँस्करण इकाइयों के स्थापना की। इस विषय में केन्द्र व राज्य सरकारें गम्भीर हैं, ताकि उन्नत प्रजाति की लीची के सदुपयोग से प्रसँस्कृत कई गुणवत्ता युक्त उत्पाद बाजार में वर्ष भर उतारे जा सकें एवं किसान भाइयों व उत्पादकों को नियमित लाभ की व्यवस्था की जा सके।

मुजफ्फरपुर एवं अन्य स्थानों पर भी पकी लीची की तुड़ाई का समय मई महीने से आधे जून तक ही सीमित होता है। वैसे लीची की निर्यात क्षमता को देखते हुए इसकी खेती वर्तमान के 84,170 हे० से बढ़ा कर 1,00,000 हे० क्षेत्रफल में करने का प्रयास किया जा रहा है, तथा साथ ही दक्षिणी भारत के कुछ क्षेत्रों में, तथा हिमालय की तलहटी और तराई में ये सम्भावना देखी जा रहा है कि दिसम्बर और जनवरी में भी लीची के वृक्ष में ऑफ सीजन फल लग पाएँ।

नए क्षेत्रों में लीची व्यावसायिक खेती बढ़ाने हेतु गूटी विधि द्वारा तैयार पौधे का ही उपयोग किया जाना श्रेयस्कर होता है। इसे एयर–लेयर्ड प्लांट्स भी कहते हैं, जिसके अन्तर्गत तने पर ही जड़ें विकसित की जाती हैं, जबकि वह तना अभी भी मुख्य पौधे से जुड़ा रहता है। फिर इस

जड़ वाले हिस्से को काटकर अलग करके एक नया पौधा तैयार किया जाता है। मई–जून के महीने में स्वस्थ एवं सीधी डाली चुन कर डाली के शीर्ष से 40–50 सें०मी० नीचे किसी गाँठ के पास मानक विधि द्वारा गूटी बनाई जाती है जो दो महीने में तैयार हो जाती है। पत्तियों को छाँट कर तालाब की मिट्टी (40 कि०ग्रा०), सड़ी हुई गोबर की खाद (40 कि०ग्रा०), अरण्डी की खली (2 कि०ग्रा०), यूरिया (200 ग्रा०) के मिश्रण अच्छी तरह मिलाकर एवं हल्का नम करके गूटी बाँधनी में प्रयोग करते हैं। इस प्रकार गूटी बाँधने से जड़े अच्छी निकलती है एवं स्वस्थ पौधे की स्थापना अच्छी होती है। चूँकि लीची का पूर्ण विकसित वृक्ष आकार में बड़ा होता है। अतः इसे औसतन 10X10 मी० की दूरी पर लगाया जाता है। चिन्हित स्थान पर अप्रैल–मई माह में 90X90X90 सें०मी० आकार के गड्ढे खोद कर ऊपर की आधी मिट्टी को एक तरफ तथा नीचे की आधी मिट्टी को दूसरे तरफ रख देते हैं। वर्षा प्रारम्भ होते ही जून के महीने में 2–3 टोकरी गोबर की सड़ी हुई खाद (कम्पोस्ट), 2 कि०ग्रा० करंज अथवा नीम की खली, 1.0 कि०ग्रा० हड्डी का चूरा अथवा सिंगल सुपर फास्फेट एवं 50 ग्रा० क्लोरपाइरीफॉस, 20 ग्रा० धूल/20 ग्रा० फ्यूराडान–3/10 ग्रा० थीमेट को गड्ढे की ऊपरी सतह की मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर गड्ढा भर दिया जाता है। गड्ढे को खेत की सामान्य सतह से 10–15 सें०मी० ऊँचा भरा जाता है। वर्षा ऋतु में गड्ढे की मिट्टी दब जाने के बाद उसके बीचों बीच में खुरपी की सहायता से पौधे की पिंडी के आकार की जगह बनाकर पौधा लगाया जाता है, जिसके पश्चात पास की मिट्टी को ठीक से दबा कर एवं पौधे के चारों तरफ एक थाला बनाकर 2–3 बाल्टी (25–30 ली०) पानी डाल दिया जाता है। तत्पश्चात वर्षा न होने पर पौधों के पुर्नस्थापना होने तक पानी देते रहना पड़ता है।

प्रारम्भ के 2–3 वर्षो तक लीची के पौधों को 30 कि०ग्रा० सड़ी हुई गोबर की खाद, 2 कि०ग्रा० करंज की खली, 250 ग्रा० यूरिया, 150 ग्रा० सिंगल सुपर फास्फेट तथा 100 ग्रा० म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्ष की दर से दिया जाता है। तत्पश्चात पौधे की बढ़वार के साथ–साथ खाद की मात्रा में वृद्धि की जाती है। करंज की खली एवं कम्पोस्ट के प्रयोग से लीची के फल की गुणवत्ता एवं पैदावार में वृद्धि होती है। लीची के पौधों में फल तोड़ाई के बाद नए कल्ले आते हैं जिन पर अगले वर्ष फलन आती है। अतः अधिक ओजपूर्ण एवं स्वस्थ कल्लों के विकास हेतु खाद, फॉस्फोरस एवं पोटाश की सम्पूर्ण एवं नत्रजन की दो–तिहाई मात्रा जून –जुलाई में फल की तोड़ाई एवं वृक्ष के काट–छाँट के साथ–साथ दिया जाता है। लीची के फलों के तोड़ाई के तुरन्त बाद खाद दे देने से पौधों में कल्लों का विकास अच्छा होता है एवं फलन अच्छी होती है। शेष नत्रजन की एक तिहाई मात्रा फल विकास के समय जब फल मटर के आकार का हो जाएं सिंचाई के साथ दिया जाता है। अम्लीय मृदा में 10–15 कि०ग्रा० चूना प्रति वृक्ष 3 वर्ष के अंतराल पर देने से उपज में वृद्धि देखी गई है। जिन बगीचों में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दे उनमें 150–200 ग्रा० जिंक सल्फेट प्रति वृक्ष की दर से सितम्बर माह में अन्य उर्वरकों के साथ देना लाभकारी पाया गया है।

लीची के छोटे पौधों में स्थापना के समय नियमित सिंचाई की जाती है (सर्दियों में 5–6 दिनों तक गर्मी में 3–4 दिनों के अंतराल पर थाला विधि से)। लीची के पूर्ण विकसित पौधे जिनमें फल लगना प्रारम्भ हो जाता हो उनमें फूल आने के 3–4 माह पूर्व (नवम्बर से फरवरी) पानी नहीं दिया जाता है। लीची के पौधों में फल पकने के छ–सप्ताह पूर्व (अप्रैल के प्रारम्भ से ही फलों का विकास तेजी से होने लगता है। अतः जिन पौधों में फलन प्रारम्भ हो गया है उनमें इस समय उचित जल प्रबंध एवं सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है, चुँकि जल की कमी से फल का विकास रुक जाता है एवं फल चटखने भी लगते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में तेज गर्म हवा (लू) एवं शीत ऋतु में पाले से लीची के बचाव हेतु कारगर प्रबंध आवश्यक होता है। प्रारम्भ के 3–4 वर्षो में पौधों की अवांछित शाखाओं को निकाल दिया जाता है, ताकि मुख्य तने का उचित विकास हो सके। तत्पश्चात चारों दिशाओं में 3–4 मुख्य शाखाओं को विकसित होने दिया जाता है, जिससे वृक्ष का आकार सुडौल, ढाँचा मजबूत एवं फलन अच्छी आती है। लीची के फल देने वाले पौधों में प्रतिवर्ष अच्छी उपज के लिए फल तोड़ाई के समय 15–20 सें०मी० डाली सहित तोड़ने से

उनमें अगले वर्ष अच्छे कल्ले निकलते हैं तथा उपज में वृद्धि होती है। अध्ययन से यह भी देखा गया है कि लीची के पौधों में अधिकतम फलन नीचे के एक तिहाई छत्रक से होती है तथा वृक्ष के ऊपरी दो तिहाई भाग से अपेक्षाकृत कम उपज प्राप्त होती है। अतः पूर्ण विकसित पौधों के बीच की शाखाएं जिनका विकास सीधा ऊपर के तरफ हो रहा है, उनको काट देने से उपज में बिना किसी क्षति के पौधों के अंदर धूप एवं रोशनी का आवागमन बढ़ाया जा सकता है। ऐसा करने से तना– वेधक कीटों का प्रकोप कम होता है तथा पौधों के अंदर के तरफ भी फलन आती है। फल तोड़ाई के पश्चात सूखी, रोगग्रसित अथवा कैची शाखाओं को काट दिया जाता है। पौधों की समुचित देख–रेख, गुड़ाई तथा कीटों एवं रोगों से रक्षा करने से पौधों का विकास अच्छा होता है एवं उपज अनुमान से थोड़ी अधिक बढ़ पाती है।

लीची के वृक्ष को पूर्ण रूप से तैयार होने में लगभग 15–16 वर्ष का समय लगता है। अतरू प्रारम्भिक अवस्था लीची के पौधों के बीच की खाली पड़ी जमीन का सदुपयोग अन्य फलदार पौधों एवं दलहनी फसलों/सब्जियों को लगाकर किया जाता है। इससे किसान भाईयों को अतिरिक्त लाभ के साथ–साथ मृदा की उर्वराशक्ति का भी विकास होता है। शोध कार्यों से यह पता चला है कि लीची में पूरक पौधों के रूप में अमरुद, शरीफा एवं पपीता जैसे फलदार वृक्ष उपयुक्त होते हैं, जो लीची के दो पौधों के बीच में रेखांकित करके 5 मी० की दूरी पर लगाए जाते हैं। इस प्रकार एक हेक्टेयर जमीन में लीची के 100 पौधे तथा 300 पूरक पौधे लगाए जा सकते हैं।

लीची में उभयलिंगी मादा फूलों में ही फल का विकास होता है। इन फूलों में पुंकेसर अंडाशय के नीचे होता है अतरू स्वयं परागण न होकर कीटों द्वारा परागण की आवश्यकता होती है इसलिये अधिक फलन के लिये मादा फूलों का समुचित परागण होना आवश्यक होता है और परागण के समय कीटनाशी दवाओं का छिड़काव नहीं किया जाता, क्योंकि इससे फलन प्रभावित होती है। लीची के गुणवत्ता युक्त उत्पादकता वृद्धि हेतु वान्छित है कि (क) मंजर आने के सम्भावित समय से तीन माह पहले पौधों में सिंचाई न करें तथा अंतरशस्पन फसल न लगाएं, (ख) मंजर आने के 30 दिन पहले पौधों पर जिंक सल्फेट (2 ग्रा०/लीटर) के घोल का पहला एवं 15 दिन बाद दूसरा छिड़काव करने से मंजर एवं फूल अच्छे आते हैं, (ग) फूल आते समय पौधों पर कीटनाशी दवा का छिड़काव न करें तथा बगीचे में पर्याप्त संख्या में मधुमक्खी के छत्ते रखें, (घ) फल लगने के एक सप्ताह बाद प्लैनोफिक्स 2 मि०ली०/4.8 ली०) का एक छिड़काव करके फलों को झड़ने से बचाया जाता है, तथा फल लगने के 15 दिन बाद से बोरिक अम्ल 4 ग्रा० प्रति ली० के घोल का 15 दिनों के अंतराल पर तीन छिड़काव करने से फलों का झड़ना कम हो जाता है, तथा साथ ही और फल की मिठास भी अत्यधिक बढ़ जाती है।

वस्तुतः संकीर्ण आनुवंशिक आधार एवं समय के साथ–साथ श्रेष्ठ किस्मों के अभावत के कारण पादप प्रजनन की विधियों के उपयोग द्वारा शाही लीची की ऐसी प्रजातियों का विकास आवश्यक हो गया है जिनके फल बड़े हों किन्तु अन्द्रर बीज छोटे हों, शेल्फ लाइफ में बढ़त सम्भव हो सके तथा परिपक्वता की अवधि में भी अन्तर हो सके, ताकि हर थोड़े अन्तराल पर पके फल तोड़े व निर्यात किये जा सकें, न कि सभी फल एक साथ ही पक जाएँ और उनके निर्यात की समुचित व्यवस्था न हो पाए। किन्तु इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कमी है कि पौधों के अनुपात में लीची के नर एवं मादा पुष्पों का अनुपात मेल नहीं खाता (मादा कम और नर अधिक)। इस कारण फल पत्रिपक्वता के पूर्व ही झड़ जाते हैं। विगत एक–दो वर्षों में पोटैशियम परक्लोरेट, पैक्लोब्युट्राजोल एवं प्रोहेक्साडिओन कैल्शियम के उपयोग से लीची में कृत्रिम रूप से भी पुष्पों के बनने की क्रिया बढ़ाई जा रही है। इन सारी अनुवांशिक, पादप प्रजनन, सस्य एवं उद्यान विज्ञान के समन्वित प्रयास से न सिर्फ शाही लीची, बल्कि लीची की अन्य सभी प्रजातियों का विकास तथा उनकी उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि व कृषि क्षेत्र विस्तार सम्भव है।

लीची के घने वृक्षों में कैनोपी की व्यवस्था द्वारा पौधों के पत्तों और टहनियों को इस तरह से प्रबंधित किया जाता है कि इस अनवरत प्रबन्धन से सूर्य के प्रकाश का अधिकतम उपयोग हो सके और पौधों का विकास और फलने–फूलने की प्रक्रिया में सुधार हो सके। इसका मुख्य उद्देश्य पौधों के स्वास्थ्य और उत्पादकता को अनुकूलित करना है।

❖

धान की उन्नतशील खेती : उचित सस्य क्रियाएं एवं फसल प्रबंधन

डा प्रकाश सिंह, डा कमलेश कुमार प्रसाद
सहायक प्राध्यापक, वनस्पति अनुसंधान इकाई (बिहार कृषि विश्वविद्यालय), धनगई, बिक्रमगंज, रोहतास
डा रामलखन वर्मा
केन्द्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक, ओडिशा

धान (चावल) भारत में उगाई जाने वाली एक प्रमुख खाद्यान्न फसल है। जिसमें लगभग 80 % देश की आबादी, किसी ना किसी रूप में धान/ चावल का प्रयोग अपने जीविकोपार्जन में करते है। वर्ष 2023–24 के कृषि आकडे के अनुसार, भारत के 47.8 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर धान की खेती (लगभग सभी राज्यों में) की जाती है एवं कुल 137.8 मिलियन टन उत्पादन होता है। भारत में, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, तेलंगाना एवं ओडिशा में सबसे ज्यादा क्षेत्रफल पर धान की खेती की जाती है। जिसमे 5.76 मिलियन हेक्टेयर में उत्तर प्रदेश एवं 3.11 मिलियन हेक्टेयर बिहार में होती है तथा उत्पादन 15.9 मिलियन टन उत्तर प्रदेश एवं 9.52 मिलियन टन बिहार में होता है । धान की सबसे ज्यादा उत्पादकता, पंजाब (45.2 कु0/हें.), आंध्र प्रदेश (38.2 कु०/हें.), हरियाणा (38.1 कुव/हें.) में होती है तथा उत्पादकता में, बिहार एवं उत्तर प्रदेश, क्रमशः 9 वें एवं 12 वें स्थान पर है । धान के अच्छी उपज हेतू, उचित जल निकासी वाली चिकनी – दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है, जिसका पीएच मान 5 से 8 के बीच हो और 1% से अधिक जैविक कार्बन हो । देश में, धान की खेती दो मुख्य तरीकों से की जाती है रोपाई द्वारा और सीधे बीज बोकर/बिजाई द्वारा (चित्र. 1)। रोपाई में, पहले नर्सरी में बीज बोए जाते हैं और फिर पौधों को मुख्य खेत में रोपा जाता है जबकि सीधी बुवाई में, बीज को सीधे खेत में बोया जाता है ।

उत्तर प्रदेश एवं बिहार में, किसान आमतौर पर जून के पहले सप्ताह में बीज बोना शुरू करते हैं एवं 25–30 दिन के तैयार पौधा/बिचडा की रोपाई करते है । धान की खेती के लिए, जलवायु, भूमि, उन्नत किस्में, खेत की तैयारी, बीज उपचार, उचित सिंचाई, खरपतवार नियंत्रण एवं रोग ब्याधि प्रबंधन जैसी कई बातों का ध्यान रखना आवश्यक है ।

जलवायु और भूमि : धान की खेती के लिए गर्म और आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है, खासकर जब फसल बढ़ रही हो । यह विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाई जा सकती है लेकिन चिकनी दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त मानी जाती है । मिट्टी का पीएच मान 5–8 के बीच और जैविक कार्बन की मात्रा 1.0% से अधिक होनी चाहिए । साथ ही, खेत में अच्छी जल निकासी व्यवस्था होनी चाहिए ।

धान की जलवायु अनुकूल उन्नत किस्में– धान की कई उन्नत किस्में हैं जो विभिन्न विशेषताओं जैसे कि उच्च उपज, रोग प्रतिरोधक क्षमता, और पानी की कमी को सहन करने की क्षमता के लिए जानी जाती हैं–

1. अल्प अवधि के प्रभेद: मालवीय – 3022, मालवीय – 1309, मालवीय – 1304, सबौर नरेंद्र, सबौर कुंवर, सी ओ – 51, वन्दना, आई आर – 64 सब – 1, नरेंद्र – 97, एम टी यू – 1010, एन. डी. आर. – 2064, इत्यादि।

2. मध्यम अवधि के प्रभेद: सबौर प्रताप, सबौर विजय, सबौर मंसूरी, नरेंद्र – 359, एन. डी. आर.– 2065, मालवीय–4–3, मालवीय– 105–सब– 1, अंकुर सम्पूर्णा, डी. आर. आर. – 53, डी. आर. आर.– 62, मोती, सरजू– 52, इत्यादि ।

3. लम्बी अवधि के प्रभेद: नाटी मंसूरी/एमटीयू – 7029, स्वर्णा सब – 1, साम्भा सब – 1, बी. पी. टी–5204, सबौर हीरा, सबौर श्रीराम, सी आर धान – 801, एन. डी. आर.– 8802, राजेंद्र मंसूरी, इत्यादि ।

4. सुगंधित किस्में– मालवीय सुगंधा – 917, मालवीय सुगंधा – 156, मालवीय – 2–1, सबौर सोना, राजेंद्र कस्तुरी, नरेन्द्र लालमती, एन. डी. आर. – 6244, एन. डी. आर. – 6093, आदमचीनी, सोनाचुर, इत्यादि है...

खेत की तैयारी एवं धान की रोपाई– खेत को रोपाई से 3 सप्ताह पहले सूखी जुताई करनी चाहिए, और फिर 5–10 सेमी पानी में डुबोना चाहिए । जैविक खाद या हरी खाद जैसे–ढैचा, आदि मिलाने के बाद, खेत को समतल करना चाहिए। रोपाई से 3 दिन पहले खेत में पानी भर देना चाहिए, जिससे मिट्टी खिल जाये एवं एक से दो जुताई कर पाटा लगाकर खेत तैयार करना चाहिए । उसके उपरान्त, उपचारित धान के बीजों से तैयार 20–25 दिन के पौध/ बिचडों की एक अथवा अधिकतम दो पौध का प्रयोग करना पर्याप्त होता है और ये सबसे महत्वपूर्ण है कि बिचडा ना ही ज्यादा पुराना हो एवं ना ही ज्यादा संख्या में हो ताकि वे रोगों और कीटों से सुरक्षित रहें ।

खाद एवं उर्वरक की मात्रा– कई बार ऐसा देखा जाता है किसान पूरी मेहनत से फसल की बुवाई की दिशा में आगे बढ़ते हैं, लेकिन कढी मेहनत के बावजूद फसल कमजोर रह जाती है, पौधे गिरने लगते हैं और दाना भरपूर नहीं बनता। इसका एक

चित्र. 1 धान की सीधे बीज बुवाई/बिजाई एवं तैयार पौध/बिचडा की रोपाई करते किसान

बड़ा कारण खाद का असंतुलित या गलत इस्तेमाल करना भी है। किसान भाई बिना सोचे–समझे यूरिया खादों का अत्यधिक प्रयोग न करें, ज्यादा यूरिया/ नाइट्रोजन डालने से पौधे कमजोर हो जाते हैं. साथ ही झुलसा रोग, तना छेदक कीट और अन्य समस्याएं आ सकती हैं, जिससे फसल गिरने लगती है और उपज पर सीधा असर पड़ता है।

धान की 130 दिन या उससे ज्यादा समय में पकने वाली धान की किस्में जिसकी प्रति हेक्टेयर उपज70 क्विंटल से अधिक हो, तो उन्हें खाद की मात्रा प्रति हेक्टेयर 120 किलो नाइट्रोजन, 60 किलो फॉस्फोरस, 40 किलो पोटाश और 5 से 10 किलो जिंक की जरूरत होती है एवं सुगंधित धान के लिए 90 किलोग्राम नत्रजन, 50 किलोग्राम फॉस्फोरस व 30 किलोग्राम पोटाश उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए, ये पोषक तत्व/ उर्वरक – डी.ए.पी. (18–N, 46–P) एसएसपी (16–P) या एनपी के (12–N–32–P–16–K) खादों के माध्यम से दे सकते हैं, (चित्र–2)

चित्र.2 खाद का संतुलित इस्तेमाल करता किसान

उर्वरकों के प्रयोग में, यूरिया खाद की पूरी मात्रा, कभी एक साथ नहीं देना चाहिए । इसे तीन भाग में बांटकर, खेत के जुताई/अंतिम तैयारी के दौरान, फॉस्फोरस की पूरी मात्रा एवं दो–तिहाई पोटाश के साथ देना चाहिए, यूरिया की दूसरी मात्रा, कल्ले निकलते समय एवं तीसरी मात्रा फूल आने के एक सप्ताह पूर्व, बाकी बचे हुए पोटाश के साथ प्रयोग करना चाहिए, इससे दाने चमकदार और वजनदार बनते हैं, ही, यूरिया कि बर्बादी भी नहीं होती और पौधा समय–समय पर पोषण पाता है और मजबूत बनता है। साथ ही, झुलसा और खैरा रोग से बचने के लिए जिंक सल्फेट का प्रयोग भी जरूरी है, एक हेक्टेयर में 12 से 15 किलो जिंक सल्फेट देना चाहिए । इसे भी तीन हिस्सों में देना सही रहता है । एक भाग खेत की तैयारी में, दूसरा पौधे की बढ़वार के समय और तीसरा दाना बनने के समय देना चाहिए । अगर किसान संतुलित मात्रा में खादों का इस्तेमाल करें, तो फसल न केवल रोगों से बचेगी, बल्कि उपज भी ज्यादा होगी, इससे आमदनी बढ़ेगी और मेहनत का सही फल मिलेगा।

सिंचाई– सिंचाई की आवश्यकता फसल की वृद्धि के विभिन्न चरणों में अलग–अलग होती है । कुछ क्षेत्रों में, धान की खेती के लिए सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था होना आवश्यक है । पानी का संवेदनशील उपयोग करना महत्वपूर्ण है, खासकर भूजल स्तर की कमी और मानसून की अनियमितता को देखते हुए ।

खरपतवार नियंत्रणः धान की फसल में खरपतवार प्रबंधन के लिए कई तरीके अपनाए जा सकते हैं, जिनमें निराई–गुड़ाई, रासायनिक खरपतवार – नाशकों का उपयोग और जैविक तरीके शामिल हैं।

1. निराई–गुड़ाई– यह खरपतवार नियंत्रण का एक पारंपरिक और प्रभावी तरीका है। हाथ से या खुरपी से खरपतवारों को उखाड़कर खेत से बाहर निकालें (चित्र. 3)। पंक्तिबद्ध बुवाई में हों चलाकर भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। पहली निराई–गुड़ाई रोपाई के 20–25 दिन बाद और दूसरी 40–45 दिन बाद करें।

2. रासायनिक खरपतवार नाशकः कुछ खरपतवारनाशकों का उपयोग किया जा सकता है, जैसे कि पेन्डीमिथालीन, प्रेटीलाक्लोर, मैटसल्फ्यूरोन, बिसपाइरी बैग सोडियम, ब्यूटाक्लोर, बेंथियोकार्ब, 2, 4–डी, थायोबैनकार्ब, इत्यादि है। खरपतवारनाशकों का उपयोग निम्नांकित तरीके से करना चाहिए–

- पौध की खेत में रोपाई के बाद से 2–3 दिन बाद (रोपाई के 48 से 72 घंटों के अंदर), पर्याप्त नमी युक्त भूमि में प्रति एकड़ की दर के अनुसार 500 मिलीलीटर प्रेटीलाक्लोर 50 ई.सी. या 1000 मि.ली. पेन्डीमिथालीन 30 ई. सी. या 1200 मि.ली. बूटाक्लोर 50 ई. सी. या 1200 मि.ली. थायोबैनकार्ब 50 ई.सी. या 6 किलोग्राम बेन्थियोकार्ब 10 प्रतिशत दवा के छिड़काव से चौड़ी पत्ती वाले विभिन्न घासों पर नियंत्रण प्राप्त कर सकते हैं।
- रोपाई के 15–20 दिन बाद प्रति हेक्टेयर जमीन में 625 ग्राम 2 या 4 – डी सोडियम साल्ट अथवा बिसपाइरी बैक सोडियम – 10 : एस एल 250 मिलीलीटर के प्रयोग से चौड़ी एवं सकरी पत्ती वाले घासों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।
- चौड़े पत्ते वाले खरपतवारों की रोकथाम के लिए 75 ग्राम मैटसल्फरोन –20 डब्लयू० पी० को प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 400 लीटर पानी में मिलाकर रोपाई से 20–25 दिनों के बाद छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव करने से पहले खेत

चित्र. 3 – धान की फसल में हाथ या खुरपी से खरपतवारों निकालता किसान

में रूके हुए पानी को निकाल दें और छिड़काव करने के एक दिन बाद खेत को फिर पानी दें।

•

कीट और रोग नियंत्रणः धान की फसल में लगने वाले कीट तथा रोगों के प्रकोप से सालाना लगभग 10 से 15 फीसदी उत्पादन कम होता है। ऐसे में सही समय पर फसल में कीट व रोगों की पहचान करके इनका नियंत्रण करना आवश्यक होता है। धान की फसल को मुख्यतः चार तरह के सूक्ष्म जीव जैसे कवक, जीवाणु, वायरस तथा नेमाटोड नुकसान पहुंचाते हैं। ऐसे में धान की फसल में कीट व रोगों का उचित प्रबंधन करना बेहद आवश्यक है।

धान की फसल में लगने वाले मुख्य रोगः

ब्लास्ट / झोंका रोगः धान में यह रोग नर्सरी में पौध तैयार करते समय से लेकर बढ़ने तक लग सकता है। यह बीमारी पौधे की पत्तियों, तना तथा गांठों को प्रभावित करता है। पत्तियों में शुरूआत में नीले रंगे के धब्बे बन जाते हैं जो बाद में भूरे रंग में तब्दील हो जाते हैं जिससे पत्तियां मुरझाकर सुख जाती है। तने पर भी इसी तरह के धब्बे निर्मित होते हैं। पौधे की गांठों में यह रोग होने पर पौधा पूरी तरह खराब हो जाता है। इस रोग से रोकथाम के लिए कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यूपी की 500 ग्राम मात्रा या प्रोपीकोनाजोल 25 ईसी 500 मिली प्रति हेक्टेयर 500 से 600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

ब्राउन स्पष्ट/भूरा धब्बा रोग– यह पौधे की पत्तियों, तने और फूलों जैसे हिस्से को प्रभावित करता है। पत्तियों और फूलों पर विशेष रूप से लगने वाले इस रोग के कारण पौधे पर छोटे भूरे धब्बे दिखाई देने लगते हैं । यह धब्बे पहले अंडाकार या बेलनाकार होते है फिर गोल हो जाते हैं। इन धब्बों के कारण पत्तियां सुख जाती है। इस रोग के
कारण पौधे की पत्तियां भूरी और झुलसी हुई दिखाई देती है। इस रोग से रोकथाम के लिएकृ कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यूपी की 500 ग्राम मात्रा या प्रोपीकोनाजोल 25 ईसी 500 मिली प्रति हेक्टेयर 500 से 600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

फाल्स स्मट/आभासी कंड/हल्दी रोग– पहले इस रोग का ज्यादा महत्व का नहीं माना जाता था बल्कि इसे किसान के लिए शुभ संकेत माना जाता था । इस रोग के लक्षण पौधों की बालियों में केवल दानों पर ही दिखाई देते हैं । रोगजनक के विकसित हो जाने के कारण बाली में कहीं कहीं बिखरे हुए दाने बड़े मखमल के समान चिकने हरे समूह में बदल जाते हैं, जो अनियमित रूप में गोल अंडाकार होते हैं। इसके कारण फसल का दाना हरे रंग के बीजाणुओं में बदल जाता है। जिसके कारण उत्पादन कम हो जाता है। एजोक्सीस्ट्रोबिन 11.00:. टेबुकोनाजोल 18.30 : एस. सी. या प्रोपिकोनाजोल 25 ई.सी. की 500 मिलीलीटर या कार्बेन्डाजिम 12 :. मैंकोजेब 63 : या कार्बेन्डाजिम .एजॉक्सीस्ट्रोबिन की 500–800 मिलीलीटर प्रति हेक्टेयर की मात्रा लेकर 800 – 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। पहला छिड़काव पौधे में बूट लीफ आने के बाद तथा दूसरा छिड़काव फूल आने के बाद करना चाहिए ।

जीवाणु झुलसा या झुलसा रोग– यह रोग जेंथोमोनास ओराइजी नामक जीवाणु से फैलता है। पौधों की चोटी अवस्था से लेकर परिपक्व अवस्था तक यह बीमारी कभी भी लग सकती है। इस रोग में पत्तिया नोंक अथवा किनारों से शुरू होकर मध्य भाग तक सूखने लगती हैं। सूखे हुए किनारे अनियमित एवं टेढ़े मेढ़े या झुलसे हुये दिखाई देते हैं। इन सूखे हुये पीले पत्तों के साथ साथ राख के रंग के चकत्ते भी दिखाई देते हैं। संक्रामण की उग्र अवस्था में पत्ती सूख जाती है। बालियों में दाने नहीं पड़ते हैं। स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट व टेट्रासाइक्लिन मिश्रण की 1 ग्राम तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 30 ग्राम मात्रा प्रति 10 लीटर पानी में/स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट 75 ग्राम तथा कॉपर ऑक्सी क्लोराइड की 2250 ग्राम प्रति हेक्टेयर का घोल 800 से 1000 लीटर पानी में बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

धान की फसल में लगने वाले मुख्य कीटः

तना छेदक (Stem Borer) यह कीट धान के तने को नुकसान पहुंचाता है, जिससे पौधे सूख जाते हैं और उपज कम हो जाती है ।

पत्ती लपेटक (Leaf Folder) यह कीट पीले से हरे रंग का होता है । समूह में धान की पत्तियों पर अंडे देते हैं, जिससे सुंडियां निकलती हैं। पत्तियों के मुलायम हिस्सों को खाकर पत्तियों को किनारे से मुड़ने लगती है। यह कीट पत्तियों को लपेटकर उसमें रहता है और पत्तियों को खाता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया बाधित होती है।

भूरा फुदका (Brown Plant Hopper) यह कीट हल्के भूरे रंग के होते हैं जो पौधों के निचले भाग या मिट्टी के आस–पास पाए जाते हैं । यह कीट भी पत्तियों से रस चूसता है और पौधों को नुकसान पहुंचाता है।

हरा फुदका (Green Leafhopper) यह कीट पत्तियों से रस चूसता है जिससे पौधे कमजोर हो जाते हैं और फसल की वृद्धि रुक जाती है ।

गंधी बग (Gundhi Bug) यह कीट दानों को नुकसान पहुंचाता है, जिससे दाने कमजोर और बदरंग हो जाते हैं।

तना छेदक (राइस स्टेम बोरर) पत्ती लपेटक कीट – लीफ फोल्डर /भूरा फुदका कीट–ब्राउन प्लांट हॉपर (बी.पी. एच) कीट के लिए– एसीफेट 75 एस. पी 266 से 400 ग्राम या थियामेथोक्सम 25% W&G– 40–80 ग्राम को 300–400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ खेत में छिड़काव करें या कारटैप एस.पी (कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 50: एस. पी.) दवा को प्रति एकड़ धान के खेत में 75 से 10 किग्रा प्रति एकड़ इस्तेमाल करें ।

रस चूसक/गंधी बग (Gundhi Bug) कीट के लिए – थियामेथोक्सम 12.6% + लैम्ब्डा साइहलोथ्रिन 9.5% जेड सी – 80 मिलीलीटर को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें।

❖

आधुनिक तकनिकियों द्वारा पूर्वी उत्तर प्रदेश में खरीफ मक्का का विस्तार

शंकर लाल जाट, मनीष ककरालिया, भूपेंद्र कुमार, सुबी एसबी, रोमेन शर्मा व शांति देवी बम्बोरिया
भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान
लुधियाना, पंजाब

पूर्वी उत्तर प्रदेश (गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़, कुशीनगर, बलिया, गाजीपुर आदि जिलों) की कृषि परंपरा प्राचीन काल से जुड़ी रही है। यहाँ की गंगा–घाघरा–राप्ती नदियों द्वारा बनाई गई उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी, समुचित वर्षा और श्रमिक आधारित खेती ने इसे सदियों से एक कृषि प्रधान क्षेत्र बनाए रखा है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में धान, गेहूं, गन्ना दलहन–सब्जियाँ के साथ–साथ मक्का भी प्रमुख फसल हैं। हालांकि पूर्वी उत्तर प्रदेश में मक्का का क्षेत्र हाल ही के वर्षों में बढ़ा है, लेकिन अत्यधिक वर्षा, जल भराव, देर से बुवाई, बीज को छिटक कर बोने, कम उपज देने वाली मक्का संकर किस्मों के उपयोग जैसी पारंपरिक प्रथाओं और बाजार अस्थिरता के कारण कई क्षेत्रों में इसकी उपज व क्षेत्र में गिरावट भी देखी गई है। वर्तमान में, मक्का पूरे राज्य में 8.91 से 11.04 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में होता है, लेकिन पूर्वी उत्तर प्रदेश में यह लगभग 3.0 से 3.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में होता है। मक्का की उत्पादकता औसतन 2.2 से 2.4 टन/हेक्टेयर के आस पास बनी हुई है इसे 5 से 6 टन/हेक्टेयर तक बढ़ाया जा सकता है। अतः चावल जैसी पारंपरिक फसलों के विकल्प के रूप में इसकी प्रासंगिकता बढ़ रही है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में मक्का की खेती का विस्तार करने के लिए उन्नत संकर और प्रबंधन प्रथाओं की ओर बदलाव की आवश्यकता है। इन आधुनिक तकनीकों को बढ़ावा देने से मक्का उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है, फसल विविधीकरण के समर्थन के साथ क्षेत्र में किसानों की आय में भी सुधार हो सकता है।

उत्तर प्रदेश में खरीफ 2022–23 के दौरान जिलेवार मक्का का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उपजः

खरीफ 2022–23 के दौरान पूर्वी उत्तर प्रदेश के जिलों में मक्का की खेती में महत्वपूर्ण अंतर देखा गया। कुशीनगर (0.49 लाख हेक्टेयर, 2.92 टन/हेक्टेयर), मऊ (0.38 लाख हेक्टेयर, 2.93 टन/हेक्टेयर), बलिया (0.39 लाख हेक्टेयर, 2.92टन/हेक्टेयर), गाजीपुर (0.54 लाख हेक्टेयर, 2.65 टन/हेक्टेयर) और आजमगढ़ (0.21 लाख हेक्टेयर, 2.41 टन/हेक्टेयर) जैसे जिलों ने मक्का उत्पादन में उच्च प्रदर्शन किया। इन जिलों में उत्पादकता आधुनिक खेती पद्धतियों के अभाव में काफी कम है। वहीं देवरिया (0.15 लाख हेक्टेयर, 2.83 टन/हेक्टेयर), बस्ती, और संत कबीर नगर जैसे जिलों में भी मक्का की उत्पादकता उपर वर्णित जिलों के बराबर है परंतु क्षेत्रफल सीमित है। दूसरी ओर, गोरखपुर (0.03 लाख हेक्टेयर, 1.00 टन/हेक्टेयर) और जौनपुर (0.57 लाख

अवधि	किस्मे
लंबी	डीएचएम 206, केएमएच 8322, सीओएच(एम) 7,एचटी 5110,एनके 6801, सीपी 838, सीपी 858, एनएमएच 920, रासी 3499, एनके 30
मध्यम	डीएचएम 121, आईएमएच 224, मक्का वीजीआईएच 1, वीएमएच 4106, पीएमएच 6, पीएमएच12, सीओएच (एम) 9, सीओएच (एम) 8, ओएमएच 14 27 (कलिंग राज), केएमएच 8121, केएमएच 3712, एनएमएच 4144, एनएमएच 803
लघु	डीकेसी 7204, वीएल मधुरिमा (एफएससीएच 144), पूसा विवेक हाइब्रिड–27 इम्प्रोवेड
बायोफोर्टिफाइड	वीएलविटा, क्यूपीएमएच 6, पूसा बायोफोर्टिफाइड मक्का हाइब्रिड 2 और 3
कम्पोजिट(मिश्रित)	डी 994, पूसा कम्पोजिट–1

हेक्टेयर, 1.59 टन/हेक्टेयर) जैसे जिलों में उत्पादकता अपेक्षाकृत काफी कम है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में खरीफ मक्का में अच्छी उपज हेतु निम्नलिखित तकनिकियों का समावेष जरूरी है:

देने का समय	उर्वरक का मात्रा व समय (किग्रा/एकड़)
बुवाई के समय	55 किग्रा डीएपी व 20 किग्रा एमओपी ड्रिल करें।
5–6 पत्तियों (पहला विभाजन)	पौधे के पास 30 किग्रा यूरिया डालें।
घुटने तक (दूसरा विभाजन)	55 किग्रा यूरिया डालें।
टैसलिंग/सिल्किंग	50 किग्रा यूरिया डालें।

जलवायु आवश्यकताएँ: न्यूनतम 10° सेल्सियस तापमान, इष्टतम अंकुरण के लिए 25° सेल्सियस, उच्च तापमान (35/40° सेल्सियस) खराब परागण का कारण बनता है। 500–700 मिमी वर्षा और अच्छी जल निकासी आवश्यक है।

मिट्टी: अच्छी जल निकासी वाली रेतीली दोमट से लेकर चिकनी दोमट तक।

भूमि की तैयारी: एक जुताई के बाद दो बार हैरो चलाकर पाटा लगा देवे।

बुवाई का समय: जून के पहले सप्ताह से जुलाई के दूसरे सप्ताह (महीने की शुरुआत से मध्य तक) तक की जाती हैं।

बीजदर: 7–8 किलोग्राम/एकड़।

किस्मों का चयन:

बुवाई विधि:

मेड़ (रिज) और नाली विधि:

पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में खरीफ मौसम के दौरान मक्का उत्पादन में रिज एवं नाली विधि विशेष रूप से उपयोगी पाई गई है, जिसमें बीज को 10–15 सेमी ऊँचे बनाए गए मेड़ों पर बोया जाता है, जो सामान्यतः 60–70 सेमी की दूरी पर होते हैं। इस विधि से जल भराव से बचाव होता है और जड़ें अच्छा विकास करती हैं। मेड़ (रिज) और नाली विधि से 40–60% अधिक उपज मिलती है।

न्यू मेटिक प्लांटर:

इसका उपयोगकरके 1.0 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ तक की बचत की जा सकती है, जिससे बीज दर में कमी, समान दूरी पर रोपण, और अधिक उपज मिलती है।

पोषक तत्व प्रबंधन:

क. गोबर की खाद : 6 टन/एकड़। इम्प्रोवेड

जल प्रबंधन:

जल भराव से पूरी तरह बचें। समय पर सिंचाई (4–6 बार आवश्यक) सुनिश्चित करें, उचित जल निकासी व मक्का की अधिक उपज व पानी के कुशल उपयोग के लिए ड्रिप फर्टिगेशन (पानी के साथ खाद) अपनाएँ।

➢ **ड्रिप फर्टिगेशन:** इसके उपयोग से 30%तक पानी की बचत होती है, उपज 20–30% तक बढ़ जाती है।

➢ **बाढ़ से नुकसान:** बाढ़ के तुरन्त बाद 3% यूरिया घोल का छिड़काव करें या 25–50 किलोग्राम यूरिया/एकड़ डालें।

कीट प्रबंधन:

➢ **धब्बेदार तना छेदक:** यदि संक्रमण 10% से अधिक हो जाए, तो

क्लोर एंट्रानिलिप्रोएल 18.5 एससी 0.4 मि. ली/लीटर का छिड़काव करें।

➢ **फसल आर्मी वार्म:** नेपियर घास के साथ फसल को ट्रैप करें, फेरोमोन ट्रैप @4 प्रति एकड़ उपयोग करें। पूरे पौधे पर एनएसकेई 5% या एजाडिरेक्टिन (1500 पीपीएम) @5 मिलीप्रति लीटर का शुरुआती छिड़काव करें।

इसके बाद, आवश्यकतानुसार पौधे के चक्र में निम्नलिखित तालिका में से किसी भी कीटनाशक का छिड़काव पौधे की गोभ में करें। छिड़काव के 10–12 दिन बाद खेत पर जाएँ और देखें कि फॉल आर्मीवार्म फिर से दिखाई दे रहा है या नहीं, यदि आवश्यक हो तो कोई अन्य रसायन का छिड़काव करें और इसी तरह आगे भी करें। कीटनाशक का अधिक उपयोग करने और दो या अधिक रसायनों के मिश्रण करने से बचें, फसल को किफायती रूप से बढ़ाने के लिए 0–3 बार छिड़काव पर्याप्त है।

रासायनिक (कीटनाशक)	मात्रा (ग्राम या मि. ली.)/ली. पानी	मात्रा/एकड़	प्रतीक्षा अवधि (दिन)
क्लोरएंट्रानिलिप्रोल 18.50% एससी	0.4	80	10-15
इमामेक्टिनबेंजोएट 5% एसजी	0.4	80	10
पाइरिडालिल 10%ईसी	1.3	400	27
नोवालुरोन 05.25%+इमामेक्टिनबेंजोएट 0.9% एससी	3.0	600	32
स्पिनटोरम 11.70%एससी	0.5	100	32
लुफेनुरोन 4%+इमामेक्टिनबेंजोएट 1 5%ईसी	1.5	300	35
आइसोसाइक्लोसेराम 18.1%डब्लू/डब्लू एससी (20%डब्लू/वी एससी)	0.6	120	48
लुबेंडियामाइड 20%डब्लूजी	0.5	100	55

खरपतवार प्रबंधनः निराई–गुड़ाई के ट्रैक्टर या बैल चलित यंत्र से अंतः कृषि 15 और 30 दिन पर करे। निम्नानुसार रासायन का उपयोग 200–250 ली./एकड़ पानी में मिलाकर छिड़काव करें:

रासायनिक (खरपतवार नाशक)	मात्रा (ग्राम या मि ली.)/एकड	उपयोग समय(बुवाई के बाद, दिनों में)
एट्राजीन 50%डब्लूपी	200-400	0-3
पाइरोक्सासल्फोन 85%डब्लू/डब्लूडब्लूजी (मोमोजी, अजारो, मोवोंडा)	60	0-3
2,4–डी डाइमेथिल एमाइनसाल्ट 58% एसएल	344	15 40
टेम्बोट्रिऑन 34.4%एससी(लॉडिस, टेमोन, टॉरी, तंबोला, मिसाल)	115	15-40
टॉप्रामेजोन 336 ग्रा./ली.डब्लू/वी एससी(टाइंजर, एलीट, गिलार्डो, मेश)	30-40	15-40
हेलोसल्फ्यूरॉनमिथाइल75%डब्लूजी(सेम्प्रा, एलान, इजुका, मिलान)	36	15-40
मेसोट्रिऑन 2.27%डब्लू/डब्लू + एट्राजीन 22.7%डब्लू/डब्लूडब्लूसी(कैलरिस एक्स्ट्रा, उरुमी, एट्राह्यूज)	1400	15-40
टॉप्रामेजोन 10 ग्रा./ली.+ एट्राजीन 300 ग्रा./ली.एससी(वेसनिटकंप्लीट, एट्जोल)	1000	15-40
हेलोसल्फ्यूरॉनमिथाइल5%+ एट्राजीन 48%डब्लूजी (कॉर्नेक्स, कैनन)	450	15-40
टेम्बोट्रिऑन 9%+ एट्राजीन 45%डब्लूजी(टॉरीसुपर)	600	15-40

कटाई और छिलका हटानाः

फसल लगभग 100 दिनों में पक जाती है जब अनाज के सिरे पर काली परत जम जाती है और भुट्टे की भूसी भूरी हो जाती है। इस अवस्था में भुट्टे के छिलके को हाथ से या भुट्टे बीनने वाले उपकरण से तोड़ा जा सकता है। पूरी पौधे को रीपर मशीन से काटकर और खेत में ही हवा से सुखाया जा सकता है। यांत्रिक शैलर या डी–हस्कर (भूसी निकालने) के साथ शैलर या पूरे पौधे के लिए थ्रेशर का उपयोग करें। वैकल्पिक रूप से, 110 से 120 दिनों पर कंबाइन हार्वेस्टर का उपयोग करें।

सुखाना और विपणन (मार्केटिंग):
मक्का के भुट्टों को भूसी सहित प्राकृतिक रूप से सुखाने में 1–2 सप्ताह लगते हैं। इसे पक्के फर्श पर बिना किसी नमी और गंदगी के किया जाना चाहिए। कृत्रिम रुप से सुखाने के लिए अनाज/भुट्टा ड्रायर का उपयोग किया जा सकता है। उचित सुखाने से पहले अनाज/भुट्टे का ढ़ेर बनाने से बचें। एफ्लाटॉक्सिन (फंगस) दूषण से बचने व बेहतर बाजार मूल्य के लिए 13–14% नमी तक मक्का के दानों को अच्छी तरह सुखाएँ। निकटतम फीड मील या इथेनॉल डिस्टिलरी प्लांट से संपर्क करें।

उपजः 20 से 35 क्विंटल प्रति एकड़।

वर्षा ऋतु में भिंडी से अधिक उत्पादन हेतु किसानों को सुझाव

प्रदीप कर्मकार, बृजेश कुमार मौर्या,
सौरभ सिंह, सुदर्शन मौर्या, नीरज सिंह,
नागेन्द्र राय एवं राजेश कुमार
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी (उ.प्र.)

भिंडी (Abelmoschus esculentus) एक लोकप्रिय हरी सब्जी है, जिसे भारत केअधिकतर राज्यों में गर्मियों व वर्षा ऋतु के दौरान उगाया जाता है। अमेरिका में इसे लेडीज फिंगर तथा अंग्रेजी भाषा में ओकरा के नाम से भी जाना जाता हैं। भिंडी अपनी पौषिक गुणों से भरपूर होने के कारण विश्व की एक लोकप्रिय सब्जी फसल है। पोषण से भरपूर यह फसल कम समय तथा कम लागत में तैयार हो जाती है। भिंडी मुख्य रूप से कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन के साथ–साथ कई खनिज लवण जैसे फास्फोरस, कैल्शियम तथा विटामिन–ए, रिबोफ्लेविन एवं थाईमीन भी पाया जाता है। भिंडी की फलियॉं आयोडीन तथा लोहे की भी अच्छी स्रोत जिसके सेवन से कब्ज की समस्या दूर रहती है। भारतवर्ष में भिंडी को मुख्यतः बरसात (जुलाई से सितम्बर) व ग्रीष्म (मार्च से जून) में सफलता पूर्वक उगाते हैं। परन्तु आमतौर पर बरसात के मौसम में इसकी खेती करने से किसानों को कई जैविक तथा अजैविक चुनौतियों जैसेः खरपतवार, मृदा लवणता, कीट एवं रोग इत्यादि का सामना करना पडता है। वर्षा की फसल में जैविक कारकों के द्वारा भिंडीं की उत्पादकता अधिक प्रभावित होता है। जैविक तनाव वे कारक होते हैं जो जीवित जीवों के माध्यम से फसल को क्षति पहुँचाते हैं। इनमें कीट, रोगजनक, फफूंद, बैक्टीरिया, वायरस, एवं खरपतवार शामिल हैं। वर्षा ऋतु में नमी व तापमान में वृद्धि से इन जैविक कारकों का प्रकोप तेजी से होता है जिससे भिंडी की उत्पादकता और गुणवत्ता दोनों प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस लेख के माध्यम से हम हमारे किसान मित्रों को विभिन्न जैविक तनावों की पहचान एवं उनके कारण, प्रभाव और वैज्ञानिक प्रबंधन उपायों के लिए चर्चा करेगें।

वर्षा ऋतु में उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले मुख्य कारण–

अधिक नमी और तापमान–

मानसून के दौरान वातावरण में आर्द्रता और तापमान का असामान्य रूप से उच्च होना जैविक कारकों के पनपने के लिए अनुकूल स्थिति बनाता है। यह विशेष रूप से फफूंद और बैक्टीरिया जैसे रोगजनकों के लिए अत्यधिक अनुकूल होता है। जैसे ही पत्तियाँ लंबे समय तक गीली रहती हैं, पत्तागुलाबी धब्बा, पाउडरी मिल्ड्यू और डाउनी मिल्ड्यू जैसे रोग तेजी से फैलते हैं। इसके अलावा उच्च नमी पौधों की रोग–प्रतिरोधक क्षमता को भी कमजोर करती है, जिससे फसल और अधिक संवेदनशील हो जाती है। यही कारण है कि वर्षा ऋतु में रोगों का प्रकोप तुलनात्मक रूप से अधिक होता है और फसल में गुणवत्ता व उत्पादन में भारी गिरावट आती है।

सघन बुआई एवं जल निकासी की कमी

भिंडी की अत्यधिक सघन बुआई करने से पौधों के बीच वायुसंचार कम हो जाता है, जिससे वातावरण और भी अधिक नम हो जाता है। यह वातावरण कीटों और रोगों के लिए उपयुक्त होता है, जिससे उनकी संख्या में तीव्र वृद्धि होती है। यदि खेत में जल निकासी की समुचित व्यवस्था नहीं होती, तो जड़ सड़न जैसे रोग जल्दी फैलते हैं। खेतों में पानी ठहर जाने से न केवल जड़ें प्रभावित होती हैं, बल्कि खेत में खरपतवार और मच्छर जैसी अन्य समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। इसलिए वर्षा ऋतु में जल प्रबंधन और सही बुआई विधि अत्यंत आवश्यक है।

वर्षा ऋतु में लगने वाले प्रमुख कीट–

1. सफेद मक्खी (Whitefly)

यह भिंडी का एक प्रमुख कीट है, जो की पत्तियों से रस चूसती है तथा पत्ती शीरा मोजैक वायरस एवं तथा भिंडी पर्ण कुंचन शिरा विन्यास जैसी घातक बीमारियों के विषाणुओं को फैलाने का कार्य करती है । यह कीट पत्तियों की हरितलवक को नुकसान पहुँचाता है, जिससे पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्षमता घट जाती है और उनका विकास रुक जाता है। इसके नियंत्रण हेतु पीले स्टिकी ट्रैप का उपयोग एक प्रभावी प्रारंभिक उपाय है। इसके अलावा नीम तेल का 5.00 मिली लीटर की दर से छिड़काव करने से इस कीट की संख्या कम की जा सकती है। रासायनिक नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड जैसे संपर्क व प्रणालीगत कीटनाशकों का 1.00 मिलीग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी मे घोल बनाकर छिडकाव करने से भी इसका नियंत्रण किया जा सकता है।

2. भिंडी का फल छेदक (Earias vittella)

यह कीट पौधों की फलियों में सुराख कर अन्दर का भाग खा जाता है जिससे फलिया खराब हो जाती है और उनका बाजार मूल्य गिर जाता है। यह कीट अपने अंडे को पत्तों और फूलों पर देते है, जिससे नयी पीढी तीव्रता से फैलती है। इस नियंत्रण 5 फेरोमोन ट्रैप प्रति एकड

लगाकर किया जा सकता है, जिससे नर कीट आकर्षित होकर मारे जाते है। जैविक नियंत्रण हेतु बैसिलस थुरिन्जीनेशीस का झिड़काव करें। आवश्यकता होने पर इन्डेक्साकार्ब का 0.5 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर की दर से या साइपरमेथ्रिन रसासन का 1.00 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करने से भिंडी का फल छेदक का नियंत्रण किया जा सकता है ।

3. मूलग्रन्थी सूत्रकृमि

ये सूत्रकृमि पौधों की जड़ों में गाठे बना देते है, जिससे पौधा बौना रह जाता है। पौधे की वृद्धि रूक जाती है व पत्तियाँ पीली पड़ने लगती है।

नियंत्रणः चावल की भूसी 500 ग्राम प्रति पौधा या नीम कि पत्तियाँ 250 ग्राम प्रति पौधे की दर से भिण्डी लगाने के 1 सप्ताह पूर्व थाले या बेसिन में मिलाकर पानी देना चाहिए। इस उपचार का प्रभाव गर्मी में 75 दिन तक रहता है। गर्मी में खेत की 2–3 बार गहरी जुताई करें। 30 लीटर प्रति हैक्टेयर नीमेगान को सिंचाई के जल के साथ देने से पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में ही बचाव हो सकता है। बुवाई के समय कार्बोप्यूरान 3 जी 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर भूमि में मिलावें।

4- लाल मकड़ी (रेड स्पाइडर माइट्स)

यह आठ पैरों वाला बहुत छोटा लाल, पीला जीव होता है, जो पौधों की नीचली सतह पर भारी संख्या में कालोनी बनाकर रहता है तथा अपने तीखे मुखांगों द्वारा पत्तियों में छिद्र करता हैं और इसमे से निकलने वाले रस को चूसता है, इसके भी शिशु (निम्फ) तथा व्यस्क हानिकारक होते है। क्षति के कारण पत्तियों पर भूरे सफेद धब्बे बन जाते है व पत्तियाँ टेढी मेढी होने लगती है और भूरी पडकर गिर जाती है।

नियंत्रणः इसके नियंत्रण के लिए एकेरीसाइड जैसे रू प्रोपेजाइल (सीम्बा) 2 मिली प्रति लीटर या एबेमेक्टिन 10 मिली प्रति 15 लीटर या फेनाजाक्वीन 10 ई.सी. 1 मिली प्रति लीटर के हिसाब से छिडकाव करें। ध्यान रहे अन्य रसायन का इसमें मिलाकर छिडकाव ना करें।

प्रमुख बिमारियाँ

1. पीत शीरा मोजेक वाइरस बीमारी (यलो वेन मोजेक वाइरस)

यह भिण्डी का प्रमुख रोग है, जिसे सफेद मख्खियाँ एक पौधे से दूसरे पौधो पर फैलाती है। इस बीमारी में पौधो की पत्ती व उनकी शिराएं पीली, चितकबरी पड़ने लगती है, तथा फल भी पीले पड़ने लगते है। इस बीमारी से पौधे बौने रह जाते है व उपज भी बहुत कम होती है। इस रोग का प्रकोप बरसात में ज्यादा होता है।

नियंत्रणः बूआई के समय खेत को खरपतवार मुक्त रखना चाहिए। रोग ग्रसित पौधे को उखाडकर जला देना चाहिए। फूल आने से पहले व फूल आने के बाद मेलाथियान 50 ई.सी. 1 मिली प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिडकाव करें। डायमेथोएट 2 मिली प्रति लीटर या नीम आयल 5 मिली प्रति लीटर या एसीटामिप्रीड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिडकाव करें। आवश्यकतानुसार छिडकाव 10–10 दिन के अन्तराल पर 4–5 बार दोहरावें। सिन्थेटिक पाइरीथ्रोइड्स (साइपरमेथ्रिन, डेल्टामेथ्रिन) का छिडकाव न करे क्योंकि यह बीमारी बढाते है ।

2. भिंडी पर्ण कुन्चन (इ. एल. सी.वी.) इस बीमारी को पहली बार 1980 के दशक में भारत में कर्नाटक राज्य में देखा गया द्य इस बीमारी के शुरूआत की अवस्था में पत्तियों के निचली सतह पर कुछ हिस्से खुरदरे तथा उभरे हुए दिखायी देते है । बाद में ये पत्तियाँ उपर की तरफ मुडने लगती है। तने, शाखाएं तथा पत्ती के डंठलों में भी घुमाव देखने को मिलता है। संक्रमित पत्तियाँ मोटी एवं चमडे के समान हो जाती है। गंभीर रूप से संक्रमित पौधे में फल कम लगते है तथा बीज धारण नही के बराबर होता है।

नियंत्रणः इस बीमारी से बचाव के लिए सर्वप्रथम वाइरस द्वारा ग्रसीत पौधे को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए तथा ग्रसीत पौधे को एकत्रित करके जला देना चाहिए या फिर इसको गड्ढा बनाकर उसमें ढक देना चाहिए। सफेद मक्खी जो कि वाइरस को फैलाने का काम करता है को नियंत्रिम करने के लिए फेरोमान ट्रैप का उपयोग कर सकते है ताकि यह कीट इसमें आक्रशित होकर नष्ट हो जाऐं।

3. आर्द्रगलन

इस रोग का संक्रमण दो तरह का होता है। पौधे का जमीन में बाहर निकलने से पूर्व व दूसरा जमीन की सतह पर स्थित भाग काला पड़कर कमजोर हो जाता है, सुख जाता है। वातावरण में अधिक आर्द्रता व पौधों को घने लगाने पर यह रोग बढता हैं।

नियंत्रणः अधिक सिचांई करने से मृदा मे आद्रता बढती हैं । अतः कम सिचाई करनी चाहिए। बीजोत्पचार ट्राइकोडर्मा विरडी 4 ग्राम प्रति किलो बीज या 2 ग्राम थीरम प्रति किलो बीज की दर से बीजोत्पचार करें। एम.45 से मृद में ड्रिन्चिगं करें।

जड़ गलन

इस रोग से पौधे की जडे सड़ जाती है और पौधा पीला पड़ जाता है। इसके रोकथाम के लिए बाविस्टीन 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें। ड्रेचिंग एम–45 या कॉपर आक्सी क्लोराईड से करें ।

पाउडरी मिल्ड्यू

इस रोग के कारण पत्तियों व तने पर सफेद चूर्णी धब्बे बन जाते है। अधिक आक्रमण पर तो पत्तियाँ पीली पडकर झड़ जाती है। इस तरह पैदावार बहुत कम होती है। वातावरण में अधिक आर्द्रता होने पर रोग का प्रकोप अधिक होता है। यह बीमारी नये पत्तियों अपेक्षा पुरानी पत्तियों पर अधिक होती है। केलेक्सिन 1 मिली प्रति लीटर पानी के हिसाब से 10–12 दिन के अन्तराल छिडकाव करें।

चूर्णिल आसिताः

इस रोग में भिंडी की पुरानी निचली पत्तियों पर सफेद चूर्ण युक्त हल्के हल्के पीले धब्बे पडने लगते है। ये सफेद चूर्ण वाले धब्बे काफी तेजी से फैलते है । इस रोग का नियंत्रण न करने पर पैदावार 30 प्रतिशत तक कम हो सकती है। इस रोग के नियंत्रण हेतु घुलनशील गंधक 2.5 ग्राम मात्रा अथवा हैक्साकोनोजोल 5 प्रतिशत ई.सी. की 1.5 मिली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर 2 या 3 बार 12–15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

जैविक एवं एकीकृत कीट प्रबन्धनः

भिंडी की खेती में जैविक उपायों का उपयोग न केवल पर्यावरण के लिए सुरक्षित हैए बल्कि यह फसल के दीर्घकालीन स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी है। नीम के अर्क (एजाडिरेचिटिन) जीवाणु आधारित जैव कीटनाशक जैसे ब्यूवेरिया वैसियाना, मेटाराइजम एनिटोपेली और बैसिलस थुरिन्जिनेसिस जैविक नियंत्रण में सहायक होते हैं। इन उपायों से फसल पर कीटों का दबाव कम रहता है। और लाभकारी कीट जैसे मधुमक्खियाँ व लेडी बर्ड बीटल को भी नुकसान नहीं होता। खेत की सीमाओं पर गेंदा या तुलसी के पौधे लगाकर कीटों को आकर्षित और नियंत्रित किया जा सकता है। रोग वाहको को मारने के लिए 5 प्रतिशत नीम के बीज की गुठली के अर्क, या अदरक, लहसुन एवं मिर्च के अर्क का छिडकाव कर रोके । नागफनी या दूध की झाड़ी (मिल्क बुश) के टुकडे बना ले, पानी में भिंगो दें (टुकडो के तैरने के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी लें), इसे 15 दिनो तक किण्ड्वन के लिए छोड दें। छाने और प्रभावित पौधों पर छिडकें। नीम एवं सरसों का तेल, राइजोबैक्टीरिया, क्रोजोफेरा तेल और उसके बाद पामारोसा का तेल लगाए। 0.5 प्रतिशत तेल और 0.5 प्रतिशत धुलाई वाले साबुन के मिश्रण को भी मददगार बताया गया है।

एकीकृत कीट प्रबन्धन एक बहुपक्षीय रणनीति है जिसमें सांस्कृतिक, भौतिक, जैविक और रासायनिक उपायों का संतुलित प्रयोग होता है। जैसे कि समय पर बुआई, संतुलित उर्वरक उपयोग, जल निकासी की व्यवस्था आदि सांस्कृतिक उपाय हैं। स्टिकी ट्रैप व फेरोमोन ट्रैप भौतिक उपाय हैं । एकीकृत कीट प्रबन्धन में रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग अंतिम विकल्प के रूप में किया जाता है और उसमें समय–समय पर बदलाव भी किया जाता हैं ताकि कीटों में प्रतिरोध न उत्पन्न हो । यह विधि सतत् कृषि के लिए आवश्यक मानी जाती है।

वर्तमान में बरसात के लिए चिन्हित किस्में

वर्षा ऋतू में भिंडी की उपज लेने के लिए भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान वाराणसी द्वारा विकसीत किस्में निम्न है।

काशी चमनः इस प्रजाति के पौधे की लम्बाई 140.150 सेन्टीमीटर तक होती हैं तथा खरीफ एवं रबी दोनो मौसम में आसानी से उगायी जा सकती है। इस प्रजाति की उपज क्षमता 150 से 160 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है।

काशी उत्कर्षः इस प्रजाति के पौधे की लम्बाई 125.130 सेन्टीमीटर तक होती हैं तथा खरीफ एवं रबी दोनो मौसम में आसानी से उगायी जा सकती है। इस प्रजाति की उपज क्षमता 160 से 170 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है।

काशी सहिष्णुः भिंडी की यह प्रजाती भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित की गई है । इस प्रजाति के पौधे की लम्बाई 130 से 140 सेन्टीमीटर तक होती हैं तथा खरीफ एवं रबी दोनो मौसम में आसानी से उगायी जा सकती है। इस प्रजाति की उपज क्षमता 155 से 160 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है।

काशी पराक्रमः भिंडी की यह प्रजाती भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसीत की गई है। इस प्रजाति के पौधे की लम्बाई 140.150 सेन्टीमीटर तक होती हैं तथा खरीफ एवं रबी दोनो मौसम में आसानी से उगायी जा सकती है । इस प्रजाति की उपज क्षमता 145 से 155 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है ।

निष्कर्ष एवं किसानों के लिए सुझाव

भिंडी की खेती में वर्षा ऋतु के दौरान जैविक तनावों की चुनौती गंभीर है लेकिन इसका प्रभावी नियंत्रण संभव है। रोगों और कीटों की पहचान कर उनके अनुसार उचित वैज्ञानिक प्रबंधन अपनाया जाए तो उत्पादन में सुधार होता है और किसान की आय में वृद्धि होती है। जैविक और एकीकृत कीट प्रबन्धन जैसी विधियाँ पर्यावरणीय सुरक्षा के साथ दीर्घकालीन लाभ देती हैं। वर्षा ऋतु में कीटों और रोगों की सक्रियता अधिक होती हैए इसलिए किसानों को समय पर निगरानी, संवेदी उपायों की शुरुआत और मौसम की भविष्यवाणी पर आधारित प्रबंधन करना चाहिए। सतत और टिकाऊ खेती तभी संभव है जब किसान वैज्ञानिक जानकारी को व्यवहार में लाएं।

❖

गतिविधियाँ

किसान हित में निरंतर प्रत्ययत्नशील रहती है शिवनंदम फार्मर्स कम्पनी

धानापुर (जयदेश)। विकास खंड क्षेत्र में किसानों के हित के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहने वाली संस्था शिवनंदम फार्मर्स प्रोड्यूसर कंपनी खड़ान द्वारा लगातार किसानों के बीच में कार्य कर रही है। सब्जी के किसानों के लिए बायोटेक किसान परियोजना अन्तर्गत भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान का निः शुल्क बीज वितरण कर सब्जी किसानों को वैज्ञानिको द्वारा प्रशिक्षण दिलाना। कभी महिलाओं के लिए मशरूम उत्पादन का प्रशिक्षण दिलाकर मशरूम का स्या न उपलब्ध कराना कभी मिलेटस के वैज्ञानिकों को बुलाकर मिलेटस उत्पादन का प्रशिक्षण व मिलेटस से रेसिपी बनाने का महिलाओं को प्रशिक्षण दिलाना कभी दलहन तिलहन का निः शुल्क बीज बंटवाकर उत्पादन के लिए जागरूक करना है। इसी क्रम में इस वर्ष सूरज मुखी का 70 किलो हाईब्रिड बीज कृषि विज्ञान केंद्र चंदौली के सौजन्य से क्षेत्र में किसानों को निः शुल्क बंटवाकर खेती कराने का कार्य किया गया। मत्स्य पालन व डेयरी पालन का प्रशिक्षण दिलवाना तथा तालाब खुदवाने के लिए मत्स्य पालन विभाग से किसानों को जोड़ना डेयरी पालन के लिए किसानों को बैंकों से जोड़ना। ताकि किसान दुधारू पशुओं को बढ़ा सके जैसे हर संभव मदद दिलाना। एफपी.ओ.के निदेशक रमेश सिंह अमूल डेयरी का दूध संग्रह केंद्र खुलवाकर किसानों को बढ़िया रेट दिलवाने का काम एवं बाल्टा वालों के चंगुल से छुटकारा दिलाने का कार्य, खाद बीज व दवा का सेंटर धानापुर में खुलवाकर किसानों को उचित खाद बीज दवा उपलब्ध कराने का काम एफपी.ओ.द्वारा बखूबी किया जा रहा है। कृषि एवं ग्रामीण विकास के उत्थान के लिए निरंतर प्रयत्नशील संगठन एफए.ए.आर.डी.फाउंडेशन व अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान वाराणसी के संयुक्त तत्वाधान मे विकास खंड धानापुर के किसानों के लिए विगत तीन वर्षों से धान की सीधी बुवाई डी.एस.आर. के लिए वैज्ञानिक द्वारा प्रशिक्षण एवं धान की बुआई का कार्य सफलता पूर्वक किया जा रहा है। इस साल 17 जून से बुआई का कार्य शुरू कर 25 किसानों का कुल रकबा 6,25 हेक्टेयर कराया गया है। निदेशक रमेश सिंह ने बताया कि इस विधि से खेती करने में लागत कम आती है। पानी की बचत होती है। फसल लगभग बारह से पंद्रह दिन पहले तैयार हो जाती है। खेत की मिट्टी मुलायम बनी रहती है जिससे अगली फसल की पैदावार बढ़ जाती है तथा जो समय की बचत होती है। किसान का खेत पहले खाली होता है तो उसमें दलहन तिलहन की खेती करने पर अगली फसल सूर्य मुखी मूंग व सब्जी की खेती समय से की जा सकती है। कम से कम साल में तीन फसल आसानी से लिया जा सकता है। इस वर्ष क्षेत्र में अशोक कुमार सिंह, भानु प्रताप मौर्य, वकील बाबू पांडे, संजय मिश्रा, धनंजय यादव, तुषार कांत सिंह, श्याम बिहारी सिंह, अशोक मिश्रा जैसे कुल 25 किसानों का डीएसआर कराया गया है।

धान की सीधी बुवाई प्रशिक्षण कार्यक्रम 7 जून 2025
ग्राम- खड़ान, धानापुर, चंदौली

धान की सीधी बुवाई प्रशिक्षण कार्यक्रम (IRRI) एवं (FAARD) के तत्वावधान में 14 जून 2025 को सिद्धि, सोनभद्र में

आज दिनांक 14–6–2025 को पूर्व निर्धारित धान की सीधी बुवाई का प्रशिक्षण कार्यक्रम अंतराष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (IRRI) तथा फार्ड (FAARD) फाउंडेसन के तत्वावधान में उमामहेश्वर फार्मर प्रोड्यूसर कं–लिमिटेड सिद्धी, सरवट, घोरावल कार्यालय पर अंतरराष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान के विद्वान वैज्ञानिकों द्वारा दिया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि जिलाधिकारी सोनभद्र ने भी इस तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन करनें के लिये उमामहेश्वर फार्मर प्रोड्यूसर कं–लिमिटेड के मैनेजिंग डायरेक्टर बिनोद कुमार पांडेय के साथ उमामहेश्वर फार्मर प्रोड्यूसर कं–लिमिटेड की पूरी टीम को बधाई दिया। जिलाधिकारी को स्मृति चिन्ह तथ बुके एफपीओ के अध्यक्ष हिमांशु कुमार सिंह तथा मैनेजिंग डायरेक्टर बिनोद कुमार पांडेय के साथ सभी बोर्ड डायरेक्ट नें मुख्य अतिथि के साथ जिला कृषि अधिकारी डा–हरेकृष्ण मिश्रा, नाबार्ड के क्कडआनंद कुमार पांडेय, फार्ड फाउंडेशन के ट्रस्टी डॉ उमेश कुमार सिंह, डॉ संतोष कुमार सिंह, डॉ राजेश सिंह (पी आर ए) बी एच यू आदि का माल्यार्पण स्मृति चिन्ह देकर स्वागत किया। डी एम की उपस्थिति मे ही ईरी के वैज्ञानिकों ने अपनें अनुभव तथा ज्ञान को किसानों के बीच साझा कर को सफल बना दिया। सबसे अंत में उमामहेश्वर फार्मर प्रोड्यूसर कं–लिमिटेड के मैनेजिंग डायरेक्टर बिनोद कुमार पांडेय ने मुख्य अतिथि, वैज्ञानिकों, जिला कृषि अधिकारी, डी डी एम नाबार्ड, एफपीओ के बोर्ड अध्यक्ष हिमांशु सिंह सभी किसानों का आभार प्रगट करते हुए कार्यक्रम का समापन किया ।

FAARD FOUNDATION फार्ड फाउण्डेशन
FOUNDATION FOR ADVANCEMENT OF AGRICULTURE AND RURAL DEVELOPMENT
कृषि प्रगति एवं ग्रामीण विकास संस्था

फार्ड फाउण्डेशन के लिए प्रकाशक और मुद्रक प्रो. पंजाब सिंह द्वारा सरस्वती कुंज, नरायणपुर (डाफी) पोस्ट ऑफिस-नैपुरा, वाराणसी-221 011 (उ.प्र.), मेसर्स- बाबाश्री इण्टरप्राइजेज, पाण्डेयपुर वाराणसी-221002 मो. 9984818181 द्वारा मुद्रित, **प्रधान सम्पादकः** प्रो. आर. एम. सिंह